# इकाई 16 कृषि का व्यवसायीकरण

## इकाई की रूपरेखा



## 16.0 उद्देश्य

ब्रिटिश शासन के प्रथम चरण या 19वीं सदी के मध्य तक के दौरान भारत में कृषि के व्यवसायीकरण का विश्लेषण इस इकाई में किया गया है। अंग्रेजों के अधीन व्यवसायीकरण की जिस प्रक्रिया का प्रारंभ हुआ था उसके भारतीय जीवन पर दूरगामी परिणाम हुए, तब जो बहुत सी समस्याएँ उत्पन्न हुई थी वे आज भी हमारे साथ हैं। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपको ज्ञान हो जाएगा :

- "व्यवसायीकरण" शब्द के अर्थ का,
- ब्रिटिश शासन के पूर्व व्यवसायीकरण की हद का,
- ब्रिटिश शासन के लागू होने के साथ घटित होने वाले परिवर्तनों का,
- उन विभिन्न तरीकों के विषय में जिनके अंतर्गत व्यवसायिक कृषि को संगठित किया गया, और
- भारतीय अर्थव्यवस्था पर और भारतीय किसानों पर इस प्रक्रिया के प्रभावों के बारे में।

## 16.1 प्रस्तावना

बाजार हम सबके लिए एक परिचित संस्था है। आप प्रतिदिन बाजार से कुछ खरीदने के लिए जाते होंगे और कभी-कभी कुछ बेचने के लिए भी। ऐसा इसलिए है क्योंकि हम एक

व्यवसायिक अर्थव्यवस्था में रहते हैं। लोग कार्य करते हैं और पैसा कमाते हैं या उत्पादन करते हैं और बेचते हैं क्योंकि वे धन प्राप्त करते हैं और इस धन से वे बाजार से उन वस्तुओं को खरीद सकते हैं जिनको वे प्राप्त करना चाहते हैं। सभी प्रकार की वस्तुओं को बाजार में लाया जा सकता है—ये बहुत छोटी वस्तुओं जैसे कि सिगरेट चीनी से लेकर बहुत महंगी चीजों जैसे कि घर या जमीन हो सकती है। यहाँ तक कि श्रम के लिए भी बाजार है, उदाहरणार्थ, रोजगार कार्यालय जिनका संचालन सरकार के द्वारा किया जाता है, श्रम बाजार के ही स्वरूप है। लेकिन व्यक्तिगत श्रम बाजार भी उपलब्ध है, निश्चित रूप से आप उन जगहों के विषय में सोच रहे होंगे जहाँ से आप अपने लिए एक बढ़ई या कुली को काम करने के लिए किराये पर ला सकते हैं।

एक व्यवसायिक या एक बाजार अर्थव्यवस्था के अंतर्गत आर्थिक गतिविधियों का निर्धारण बाजार के द्वारा किया जाता है। इस कथन का क्या तात्पर्य है? इसका एक यह तात्पर्य कि लोग जैसी इच्छा करते हैं वैसी ही वस्तुओं के सस्ती खरीदने और मँहगी बेचने के लिए प्रयास कर सकते हैं। इसका यह भी अर्थ है कि यदि दाम अधिक हैं तब वे अधिक उत्पादन करेंगे और यदि दाम कम हैं तब वे कम उत्पादन करेंगे। मजदूर उन स्थानों को छोड़ने का प्रयास करेंगे जहाँ पर उनको कम मजदूरी प्राप्त होती है और उन स्थानों पर जाएंगे जहाँ पर उनको अधिक मजदूरी प्राप्त होगी। लोग नगर में उन स्थानों की तलाश करते हैं जहाँ पर वे सस्ता घर खरीद सकते हैं या जहाँ उनको कम किराया देना पड़े। इन सभी तरीकों में, आर्थिक गतिविधियों का निर्देशन बाजार के दामों द्वारा किया गया है। इस इकाई में हम आपका परिचय अंग्रेजी शासन के अधीन भारतीय कृषि के व्यवसायीकरण की प्रक्रिया और भारतीय अर्थव्यवस्था तथा समाज पर इसके प्रभावों से करायेंगे।

## 16.2 व्यवसायीकरण का क्षेत्र

बाजार सदैव से विद्यमान नहीं रहे हैं। वास्तव में मानव समाज में वे अपेक्षाकृत नये हैं। बहुत से समाजों ने उत्पादन वितरण और खपत को बिना खरीद तथा बेचे, धन की उपस्थिति और बाजार रहित रूप में संगठित किया है। धीरे-धीरे विभिन्न प्रकार की चीजों को बेचा एवं खरीदा जाने लगा और इस प्रकार से बाजार विकसित होता है। यही व्यवसायीकरण की प्रक्रिया है। व्यवसायीकरण की प्रक्रिया से गुजरने वाले समाज में कुछ चीजों का दूसरों के सम्मुख विक्रय प्रारंभ हो सकता है। जैसे कि वनवासी लकड़ी या शहद को बेच सकते हैं और नमक तथा लोहे की खरीददारी कर सकते हैं। ऐसा वे तब भी कर सकते, जबकि अन्य वस्तुयें न ही उनके द्वारा खरीदी गई है या न बेची गई।

इसी प्रकार जिस समय कृषि का व्यवसायीकरण किया जाता है तब बहुत से भिन्न-भिन्न बाजार भिन्न समयों पर सक्रिय हो सकते हैं। हम इन बाजारों की निम्नलिखित अनुमानित सूची बनाने का प्रयास करेंगे :

1) उत्पाद बाजार—इस प्रकार के बाजारों में गेहूँ या चावल या ऊन या घी जैसे बहुत से कृषि उत्पादनों को बेचा जाने लगा,
2) अंतर्गामी बाजार—कृषि में उत्पादन करने वाली वस्तुएँ जैसे औजार, बीज, रसायनिक खाद, बैल इत्यादि की बिक्री शुरू हो गई,
3) श्रम बाजार—इस तरह के वे बाजार होते हैं जहाँ पर मजदूर स्वयं को पैसे के लिए मजदूरी पर उपलब्ध कराते हैं,
4) भूमि बाजार—इस तरह के बाजारों में किसान भूमि को बेचते या खरीदते हैं, या पैसे के लिए इसको किराये पर देते हैं।
5) स्वयं धन के लिए बाजार—जैसे-जैसे व्यवसायीकरण का विकास होता है, किसान को अक्सर धन की आवश्यकता होती है। यह धन करों या किरायों की नकद अदायगी में बीज या बैलों की खरीद में या यहाँ तक कि स्वयं एवं अपने परिवारों के पोषण में काम आ सकता है। इसी प्रक्रिया के कारण ऋण बाजार का विकास होता है और ऋण बाजार का आधार निश्चय ही उस पर ब्याज के रूप में होने वाली आमदनी होती है।

किसी भी विकसित बाजार अर्थव्यवस्था में और बहुत से बाजार विद्यमान होते हैं, लेकिन

हमें उन पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार हमने देखा कि बाजारों के कई प्रकार हैं और कुछ बाजार तब भी कार्य कर सकते हैं जबकि वहाँ पर दूसरे बाजार विद्यमान न हों। उदाहरणार्थ किसान अपने अतिरिक्त गेहूँ या कपास को उस समय भी बेच सकते हैं जबकि भूमि का स्वामित्व परंपरागत प्रथाओं पर आधारित हो जिसके अंतर्गत भूमि का क्रय-विक्रय नहीं हो सकता। इसके अलावा यह भी संभव है कि फसल के कुछ भाग को बेचा जा सकता है तथा कुछ भाग को गाँव के परंपरागत तरीकों से अर्थात् बढ़ई या लुहार को भी दिया जा सकता है। इस तरह से व्यवसायीकरण एक धीमी प्रक्रिया है न कि एक अचानक या नाटकीय घटना।

## 16.3 अंग्रेजों से पूर्व व्यवसायीकरण

बाजारों के विषय में भारत में जानकारी प्राचीन समय से ही है। कृषि उत्पादनों को इन बाजारों में लाया तथा बेचा जाता था। मुगल साम्राज्य में भूमि कर के एक बड़े भाग की वसूली किसानों से धन में की जाती थी। जिसका तात्पर्य यह हुआ कि करों को अदा करने हेतु धन प्राप्त करने के लिए वे अपने उत्पादनों को बाजार में बेचते थे। यह अनुमान लगाया गया है कि इसके लिए कृषि उत्पाद का लगभग 50 प्रतिशत तक बेचना पड़ता था। इसलिए वास्तविकता में प्रत्येक उत्पादनकर्ता या उपभोक्ता सामान्यतः दोनों विनिमय में शामिल रहते थे। विशेषज्ञ सौदागरों, महाजनों तथा दलालों को पाया जा सकता था और इस बात के भी प्रमाण उपलब्ध है कि क्रय एवं विक्रय की भूमि में कुछ किस्म के अधिकारों (जमींदारी अधिकारों) का प्रचलन था।

मुगल साम्राज्य 18वीं सदी में बिखर गया, और उसका स्थान क्षेत्रीय राज्यों ने ले लिया। (इस विषय में आप खंड 1 में पढ़ चुके हैं।) ये क्षेत्रीय राज्य कभी-कभी मुगल साम्राज्य की अपेक्षा कम करों को वसूल करते थे, परंतु वे भी इन करों को नकद में वसूल करते। जिसका तात्पर्य यह हुआ कि वाणिज्य व्यवस्था अनवरत रूप में विद्यमान थी।

## 16.4 अंग्रेजों के अधीन व्यवसायीकरण

मुगल साम्राज्य के पतन का जिन नयी शक्तियों ने लाभ उठाया उनमें ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी भी थी। इसने दक्षिण भारत के क्षेत्रों और पूरब में बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा के संपन्न प्रदेशों को प्राप्त कर लिया। ये क्षेत्र कृषि में संपन्न होते हुए व्यापार एवं दस्तकारी में काफी विकसित थे। कंपनी के साथ-साथ इसके सेवकों एवं कर्मचारियों ने इस विजय के माध्यम से स्वयं को संपन्न बनाने की योजना बनायी। इन्होंने जो तरीके अपनाये उन्हीं के कारण उनके अधीन अपने विशेष गुणों के साथ व्यवसायीकरण हुआ।

इसको समझने के लिए हमें पहले इन नये शासकों के चरित्र को समझना होगा। ब्रिटेन में आधारित यह एक व्यापारिक कंपनी थी। इसको ब्रिटिश सरकार के द्वारा पूर्वी व्यापार का एकाधिकार प्रदान कर दिया गया था। एक व्यापारिक कंपनी होने के कारण इसके उद्देश्य एवं लक्ष्य भारतीय शासकों से भिन्न थे, यहाँ तक कि लुटेरे नादिरशाह से भी।

### 16.4.1 कंपनी का उद्देश्य

कंपनी का मुख्य कार्य यूरोप में बेचने के लिए भारत से माल प्राप्त करना था। उन दिनों भारत में अंग्रेजी सामान की माँग काफी कम थी जिसके कारण कंपनी को भारतीय सामान खरीदने के लिए सोने एवं चाँदी की मुद्रा को लाना पड़ता। बंगाल को जीतने के बाद कंपनी ने सोचा कि अब उसको बुलियन का अधिक समय तक आयात नहीं करना पड़ेगा बल्कि इसके स्थान पर वह भारतीय जनता से करों को वसूल करेगी। स्थानीय खर्च के बाद जो अतिरिक्त धन बचेगा उससे यूरोप को निर्यात करने वाले माल को खरीदा जाएगा। तब ब्रिटेन से सोने एवं चाँदी को भारत में भेजने की कोई जरूरत नहीं होगी। इस प्रकार आप समझ सकते हैं कि यूरोप को निर्यात होने वाला माल कंपनी के लिए भारत की ओर से एक नजराना हो गया। ईस्ट इंडिया कंपनी ने इस योजना को कार्यान्वित रूप देते हुए अपने व्यापारिक लाभ के लिए राजनीतिक शक्ति का उपयोग किया।

### 16.4.2 इन उद्देश्यों के परिणाम

उपरोक्त वर्णित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कंपनी ने निम्नलिखित दो कार्यों को करने की योजना बनायी :

1) कंपनी ने करों की वसूली इतनी बड़ी मात्रा में करने का विचार किया कि न केवल उससे भारत में सैनिक एवं प्रशासनिक खर्च को पूरा किया जा सके बल्कि अपने व्यापार को आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने के लिए अतिरिक्त धन भी उपलब्ध हो जाए।

2) पश्चिमी देशों में भारत के जिस सामान की माँग की गयी उस पर कम से कम उत्पादित लागत आनी चाहिए जिससे कि अतिरिक्त राजस्व को इन सामानों के रूप में धन प्रेषित किया जा सके।

1775 में जैसे ही कंपनी ने बंगाल की दीवानी (राजस्व नियंत्रण) को प्राप्त किया वैसे ही कंपनी के निदेशकों ने लंदन में भारत स्थित अपने अधिकारियों को लिखा कि जितनी जल्दी भी संभव हो हमारी प्राप्तियों के वार्षिक उत्पादन को हम तक पहुँचाने वाले स्रोत को व्यापक बनाया जाये और आप कंपनी के निवेश को अधिक से अधिक सीमा तक बढ़ा सकते हैं।" (यहाँ पर "निवेश" शब्द का प्रयोग यूरोप को निर्यात किये जाने वाले सामान पर खर्च होने वाले धन के लिए किया गया है)। 20 वर्ष से अधिक समय के बाद भी भारत के गवर्नर जनरल लार्ड कार्नवालिस के भी इसी प्रकार के उद्देश्य थे। उसने कहा, "बंगाल का मूल्य अंग्रेजों के लिए उसकी इस क्षमता पर निर्भर करता है कि यूरोप को निर्वासित होने वाले वार्षिक धन की आपूर्ति को वह अनवरत बनाये रखता है।"

कंपनी की भू-राजस्व व्यवस्था सहित अधिक कर लगाने की नीति का विवरण इकाई 13 में किया गया है। अब हम अपना ध्यान अन्य दो प्रश्नों पर केंद्रित करेंगे। प्रथम कृषि पर निर्यात व्यापार का प्रभाव तथा दूसरे व्यवसायिक फसलों का चुनाव।

### 16.4.3 कृषि पर निर्यात व्यापार का प्रभाव

जिन दिनों भारतीय शासक करों की वसूली करते थे, तब धन का अधिक भाग उसी क्षेत्र एवं स्थानीय स्तर पर खर्च हो जाता था। उस समय कृषि विदेशी माँग के द्वारा बहुत ही कम प्रभावित होती थी। दस्तकारी एवं अन्य सामानों का भारतीय निर्यात किसी अन्य बाहरी देश से होने वाले आयात से कहीं अधिक था। प्रारंभ में अंग्रेजों ने भी भारतीय उत्पादनों के निर्यात पर ही अपना ध्यान केंद्रित किया। इन उत्पादनों में पश्चिम को निर्यात होने वाले सूती कपड़े आदि शामिल थे। लेकिन जैसे ही ब्रिटेन में सूती कपड़ा मिल, उद्योग का विकास हुआ वैसे ही 18वीं सदी के अंत में भारतीय सूती कपड़ा उद्योग को खतरा पैदा हो गया। ब्रिटेन के ये सूती मिल भारतीय उत्पादनों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर पा रहे थे। अतः 1870 में इन मिलों के मालिकों ने यह कहते हुए आंदोलन का प्रारंभ कर दिया कि ईस्ट इंडिया कंपनी भारतीय वस्त्रों का आयात करके उनके हितों का नुकसान कर रही थी।

अब कंपनी ने महसूस किया कि उसको भारत से निर्यात करने के अन्य प्रकार के सामानों को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता होगी। कृषि उत्पादनों का निर्यात सुरक्षित होगा। इन उत्पादनों की अंग्रेजी माल के साथ कोई प्रतियोगिता न होगी तथा ये अंग्रेजी उद्योग-धंधों के लिए कच्चे माल का काम भी करेंगे। इस सामरिक नीति का अनुसरण रेशम के मामले में 1770 के वर्षों से किया गया। लेकिन ब्रिटेन में तेजी के साथ होते औद्योगीकरण से कंपनी को निर्यात करना और भी कठिन हो गया। फिर भी, नजराने के स्वरूप में ब्रिटेन जाने वाली भारतीय धनराशि को 1880 के दशांक से चीन के माध्यम से भेजा जाने लगा। ब्रिटेन चीन से काफी बड़ी तादाद में चाय का आयात करता था और उसको चांदी (बुलियन) में इसकी अदायगी करनी होती थी, क्योंकि चीनी पश्चिमी के सामान को खरीदना नहीं चाहते थे। परंतु चीनी भारतीय हाथी दाँत की चीजें, कच्ची रुई और बाद में अफीम को खरीदते थे। अगर अंग्रेज इस व्यापार पर नियंत्रण कर लें, तब उनको चीन को चाँदी भेजने की आवश्यकता नहीं होगी। चीन द्वारा चाय को भारतीय उत्पादकों के विनिमय के द्वारा खरीदा जा सकता था और इन भारतीय उत्पादकों को अंग्रेज प्राप्त कर ही रहे थे। इस व्यवस्था को "त्रिकोणीय व्यापार" के नाम से जाना जाता था तथा यह तीन केंद्रों कलकत्ता, कैंटन एवं लंदन से जुड़ा था। संपत्ति प्रथम केंद्रों से परिभ्रमण करती हुई कंपनी के खजाने में तीसरे केंद्र लंदन जाकर जमा हो जाती थी।

इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कंपनी की रुचि कृषि के एक नियंत्रित व्यवसायिकरण में थी। जिससे कि चीनी या पश्चिमी बाजार के लिए उपभोग वस्तुओं को उपलब्ध कराया जा सके।

### 16.4.4 व्यावसायिक फसलों का चुनाव

कंपनी ने जिन फसलों पर अपना विशेष ध्यान केंद्रित किया उनमें नील, कच्ची रेशम, कपास, अफीम, काली मिर्च और 19वीं सदी में चाय तथा चीनी थी। इनमें से कच्ची रेशम का उपयोग ब्रिटेन के बुनकरों द्वारा किया जाता था क्योंकि वहाँ पर रेशम का उत्पादन नहीं किया जा सकता था। यही बात कपास के लिए भी सत्य थी और इसको चीन को भी बेचा जा सकता था। अफीम की निश्चय ही चीन को तस्करी होती क्योंकि चीन में इसके आयात पर प्रतिबंध लगा हुआ था। पश्चिम में सूती कपड़ों की रंगाई के लिए नील की आवश्यकता थी। 1840 के दशक से चाय की खेती का प्रारंभ असम में किया गया जिससे कि ब्रिटेन इसकी आपूर्ति को नियंत्रित कर सके और उसको चाय के लिए चीन पर निर्भर न रहना पड़े। इनमें से किसी भी वस्तु की ब्रिटेन के उत्पादन के साथ कोई प्रतिद्वंद्विता नहीं थी। इन सभी वस्तुओं की एक और विशेषता थी। ये अपने वजन की तुलना में काफी मूल्यवान थी। कहने का तात्पर्य यह है कि वजन के हिसाब अर्थात् प्रति किलोग्राम इनका मूल्य काफी अधिक था।

हमें यहाँ पर एक अन्य बात को याद रखना चाहिए कि इस सभी सामान की ढुलाई गाड़ियों से होती थी जिनको बैल या घोड़े खींचते थे तथा समुद्र में जहाजों के द्वारा इन्हें भेजा जाता था। भारत से यूरोप तक पहुँचने में एक जहाज लगभग चार माह का समय लेता था। उन दिनों के जहाज आधुनिक समुद्री जहाजों की अपेक्षा काफी कम भार को ले जाते थे। इसलिए ढुलाई पर काफी खर्च आता था। अगर किसी सस्ती तथा काफी वजन की वस्तु को उन दिनों समुद्री जहाजों से ले जाना पड़ता था तब निश्चय ही जहाज का भाड़ा अदा करने के बाद वस्तु काफी मँहगी हो जाती थी। इससे कंपनी को उनका व्यापार करने में नुकसान होता। इसलिए उत्पादों को उनके वजन के संदर्भ में लाभदायक बनाना आवश्यक था जिससे कि लाभांश ढुलाई पर आने वाले खर्च में ही समाप्त न हो जाए।

**बोध प्रश्न 1**

1) उन कुछ बाजारों के नाम बताइये जो बाजार अर्थव्यवस्था में विद्यमान होते हैं।

......................................................................................................

......................................................................................................

......................................................................................................

2) अंग्रेजी कंपनी ने भारतीय कृषि का व्यवसायीकरण करने की योजना क्यों बनाई? उत्तर 50 शब्दों में दें।

......................................................................................................

......................................................................................................

......................................................................................................

......................................................................................................

......................................................................................................

3) सही उत्तर पर निशान लगायें।

i) अंग्रेजी शासन के दौरान कुल मिलाकर भारतीय कृषि में सुधार नहीं हुआ क्योंकि:

अ) अंग्रेजी शासक भारतीय कृषि की क्षमता का अनुमान करने में असफल हुए।

ब) भारतीय कृषि में अंग्रेजी शासकों के विशेष हित थे।

स) अंग्रेजी शासक वैज्ञानिक कृषि में रुचि नहीं लेते थे।

ii) ईस्ट इंडिया कंपनी,

अ) कृषि के व्यवसायीकरण में रुचि नहीं रखती थी।

ब) कृषि के व्यवसायीकरण में रुचि रखती थी।

स) कृषि के नियंत्रित व्यवसायीकरण में रुचि रखती थी।

## 16.5 व्यवसायिक फसलें

अब हम उन फसलों के बारे में विवेचन करेंगे जो काफी व्यवसायिक महत्व रखती थीं तथा जिन फसलों में अंग्रेजों ने भी काफी रुचि दिखायी।

### 16.5.1 कच्ची रेशम

कंपनी इस उत्पाद में अपने शासन के प्रारंभ से ही रुचि लेती थी। 1770 में कंपनी के निदेशकों ने लंदन से लिखा : "यदि बंगाल की रेशम का ठीक तरह से निर्माण किया जाए तब वह ब्रिटेन के बुनकरों द्वारा प्रयोग की जाने वाली इटली एवं स्पेन की रेशम का स्थान प्राप्त कर सकती है।" इसीलिए भारत में रेशम के निर्माण में सुधार करने के लिए विशेषज्ञों को लाया गया और उन कारखानों (रेशम के कोपों से रेशम निकालकर लपेटने का कार्य) की स्थापना की गई जहां पर रेशम के कोपों को निर्यात के लिए धागे के रूप में बुना जाता था। कंपनी अपने एजेंटों तथा अधिकारियों के माध्यम से उन वृक्षों को उगाने के लिए लोगों को बाध्य करती थी जिन वृक्षों की पत्तियों को रेशम पैदा करने वाले कीड़े खाते थे तथा ये एजेंट एवं अधिकारी रेशम कारखानों में मजदूरों को कम मजदूरी पर काम करने के लिए भी विवश करते थे। इससे रेशम को कम दाम पर प्राप्त कर लिया जाता और ठेकेदारों को काफी बड़ी मात्रा में लाभ प्राप्त करने दिया जाता था। 19वीं सदी के अंतिम दशक तक रेशम महत्वपूर्ण निर्यात के रूप में उभरा।

### 16.5.2 अफीम

हम पहले ही देख चुके हैं कि चीन से आयात होने वाली चाय के दाम अदा करने में अंग्रेजों को काफी कठिनाई होती थी। लेकिन उन्हें शीघ्र ही चीनियों को अफीम बेचने का एक मंत्र प्राप्त हो गया। अफीम एक नशीली दवा है तथा यह निकोटिन एवं अलकोहल की भांति होती है। यदि एक बार कोई व्यक्ति इसका सेवन प्रारंभ कर देता है फिर उसके लिए इसे त्यागना बड़ा ही कठिन कार्य होता है तथा वह इसको किसी न किसी मूल्य पर प्राप्त करना चाहेगा। अंग्रेजों के लिए यह बड़ी ही लाभदायक साबित हुई और वे चीन को इसकी तस्करी करने लगे। अफीम का काफी लंबे समय से भारत में बहुत कम मात्रा में उत्पादन होता रहा है। इसका उपयोग दवाई के साथ-साथ नशीली वस्तु के रूप में होता था। 1773 में वारेन हैस्टिंग्स ने नवीन राजस्व स्रोतों की तलाश में इसके उत्पादन एवं व्यापार को सरकारी नियंत्रण में ले लिया। इसकी फसल को संचालित करने के लिए ठेकेदारों की भी नियुक्ति की। बाद में अफीम के एजेंट नाम से प्रचलित अधिकारियों के अधीन इसको दे दिया गया। अफीम के पौधों का उत्पादन एक समझौते के अंतर्गत ही किया जा सकता था। इस समझौते के अनुसार इसको एक निश्चित दाम पर सरकार को बेचना होता था। अगर इस शर्त को तोड़ने का कोई भी प्रयास किया जाता तब उलंघनकर्त्ता को कड़ी सजा दी जाती। इस दाम को जितना संभव हो सकता था, उतना ही कम रखा गया था तथा इसके उत्पादन से होने वाले लाभ का मुख्य भाग सरकार को ही चला जाता था। इसकी आपूर्ति को भी नियंत्रित कर दिया गया था जिससे कि चीनी बाजार में इसके ऊँचे दामों को बनाये रखा जा सके। केंद्रीय भारत के मालवा क्षेत्र में जो अफीम उत्पादनकर्ता थे उनकी स्वतंत्रता को खत्म करने के लिए कंपनी ने काफी प्रयास किये। जब कंपनी ऐसा करने में सफल न हो सकी तब उसने मालवा से निर्यात होने वाली अफीम पर भारी कर लगा दिया। इस प्रकार से हम देखते हैं कि अफीम के उत्पादन ने कंपनी के दोनों उद्देश्यों को पूरा किया। एक ओर इससे भारत में बड़ी मात्रा में राजस्व की प्राप्ति हुई। दूसरी ओर चीन के व्यापार के माध्यम से इसकी आमदनी को धन के रूप में लंदन भेजा गया।

### 16.5.3 नील

नील एक नीला रंग होता है जिसको एक पौधे से प्राप्त किया जाता था। इसका प्रयोग सूती कपड़ों की रंगाई के लिये किया जाता था। 1790 के दशक तक पश्चिमी देशों को इसकी आपूर्ति कैरिबियन उपनिवेशों से होती थी। लेकिन इसके बाद इसका उत्पादन गिरने लगा और भारतीय नील का बाजार बढ़ने लगा। ईस्ट इंडिया कंपनी यूरोपवासियों को नील की खेती करने के लिए अपने क्षेत्रों में बसने के लिए प्रोत्साहित कर रही थी। वह नील का निर्यात करने के लिए इनसे खरीददारी भी करती। इसका तेजी के साथ उत्पादन बढ़ा।

जहाँ 1788-89 में इसका उत्पादन 5,000 मन था वहाँ 1829-30 में 1,33,000 मन हो गया।

नील की खेती निजी और रैयत दो उत्पादन प्रणालियों के अंतर्गत की जाती थी। पहली प्रणाली के अंतर्गत मालिक लोग स्वयं अपने हल एवं बैलों की मदद से नील के पौधों को उगाते थे और इस उद्देश्य के लिए वे मजदूरी पर मजदूरों को भी लगाते। पौधों को काटा जाता और मालिक उनको रंग निकालने वाले कारखानों में पहुँचा देता था। रैयत प्रणाली के अंतर्गत (इसको असामीबार के नाम से भी जाना जाता था) किसान स्वयं अपने खेतों पर नील की खेती करता था और एक निश्चित दाम पर इसको नील कारखाने को दे देता था। अधिकतर नील की खेती इस प्रणाली के अन्तर्गत ही की जाती थी क्योंकि इस प्रणाली से मालिक को बहुत से लाभ थे। वह किसान को काफी कम दाम देता, फिर भी किसान नील की खेती करने से इंकार नहीं कर सकता था। किसान के इंकार करने पर उसको पीटा जा सकता था, जेल भी भेजा जा सकता था और उसकी भूमि पर पैदा होने वाली अन्य फसलों को भी नष्ट किया जा सकता था। मालिकों को और अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए बही-खातों को बनाया जाता और उनको दिखाकर किसानों को समझा दिया जाता कि वे अभी भी नील कारखाने के कर्जदार हैं। इस कर्ज से नील कारखाने को नील की आपूर्ति करके ही छुटकारा पाया जा सकता था। यह कर्ज कभी भी समाप्त नहीं होता था और निरंतर बढ़ता जाता था। मालिक लोग यूरोपवासी थे। उनके सरकारी अधिकारियों तथा मजिस्ट्रेटों के साथ अच्छे संबंध रहते थे। अगर किसान अधिकारियों से कोई शिकायत करते तब भी वे उन पर ध्यान नहीं देते थे। इसलिए किसानों को स्वयं अपने नुकसान पर नील की खेती करने के लिए बाध्य किया जाता। उनका एकत्रित होता यह असंतोष अंततः 1859-60 में नील विद्रोह के रूप में फूट पड़ा। इस तरह से हम देखते हैं कि एक महत्वपूर्ण व्यवसायिक फसल का उत्पादन भयंकर विवशता की स्थिति में भी कराया गया।

### 16.5.4 कपास

पूर्वी भारत की महत्वपूर्ण व्यावसायिक फसल नील थी तो पश्चिम भारत की कपास। 1780 के दशक तक चीन को होने वाले निर्यातों में कपास एक महत्वपूर्ण निर्यात की वस्तु बन गयी। ईस्ट इंडिया कंपनी तथा बंबई के व्यापारी दोनों इस निर्यात की आपूर्ति पर अपना-अपना नियंत्रण कायम रखना चाहते थे। 1886 के आसपास कंपनी ने गुजरात प्रदेश में पर्याप्त क्षेत्र को प्राप्त कर लिया। कंपनी ने कपास उत्पादकों को इस बात के लिए विवश किया कि वे उसे उस दाम से कम पर बेचें जो देश के अन्य क्षेत्रों में थे। लेकिन उनकी प्रतियोगिता यूरोप के व्यक्तिगत व्यापारियों से होने लगी और बाध्य होकर उन्होंने इस व्यवस्था का परित्याग कर दिया तथा 1833 में इस व्यापार से अलग हो गये।

### 15.5.5 काली मिर्च

काली मिर्च के व्यापार में भी कंपनी ने अपनी राजनीतिक शक्ति का प्रयोग किया और काली मिर्च के उत्पादकों को भी कम से कम कीमत पर बेचने के लिए बाध्य किया गया। फ्रांसीसी कंपनी या अन्य प्रतियोगिताओं को न बेचने के लिए व्यापारियों को बाध्य किया गया। अंत में मजबूर होकर कंपनी को इस व्यापार को भी 1830 के दशक में व्यक्तिगत अंग्रेज व्यापारियों को देना पड़ा।

### 16.5.6 चीनी

गन्ने की खेती शुद्ध रूप से भारतीय खेती है और सदियों से भारत में इससे गुड़ एवं चीनी का निर्माण किया जाता रहा है। भारत के अंदर ही इसकी व्यापक स्तर पर खपत होती थी। 1830 के दशक में नील की खेती के मालिकों ने नील के गिरते दामों एवं गिरती बिक्री का सामना करने के लिए लंदन के बाजार के लिए चीनी का उत्पादन करने के लिए पूँजी का निवेश करना शुरू किया। इस समय लंदन के बाजार में चीनी पर आयात कर को कम कर दिया गया तथा इसकी मांग बढ़ने लगी। गन्ने की खेती करने के इच्छुक यूरोपवासियों को पूर्वी उत्तर प्रदेश में काफी बड़ी मात्रा में जमीनें दी गई। स्थानीय किसान बड़ी मात्रा में पहले से स्थानीय एवं देश के अन्य भागों की खपत के लिए गुड़ का उत्पादन करते थे। लेकिन अब वे गन्ने से गाढ़े रस अर्थात् राब का उत्पादन करने लगे तथा इसके वे चीनी बनाने के लिए यूरोपीय मालिकों को बेच देते थे। नील की खेती करने वाले किसानों की भाँति ही गन्ने की खेती करने वाले किसान भी फसल आने से पूर्व इन मालिकों से धन को

प्राप्त कर लेते थे। फिर वे पूर्व निश्चित दामों पर अपने गन्ने की आपूर्ति करने को बाध्य होते थे। इन मालिकों के द्वारा भरपूर लाभांश लिया जाता था और चीनी का निर्यात भी इस समय बढ़ा। 1833-34 में कलकत्ता बंदरगाह से 1600 टन चीनी का निर्यात होता था परंतु 1846-47 में यह निर्यात बढ़कर 80,000 टन हो गया अर्थात् चीनी निर्यात में 50 गुणा वृद्धि हुई। लेकिन अंग्रेज व्यापारीगण अधिक समय तक इस लाभ को बरकरार न रख सके और चीनी के दामों में गिरावट आने पर 1848 तक अधिकतर चीनी कारखाने बंद हो गये या बंद कर दिये गये। पुनः गुड़ के व्यापारी एवं खंडसारी अपने पुराने बाजारों मिर्जापुर एवं केंद्रीय भारत में इनकी बिक्री करने लगे।

### 16.5.7 चाय

1830 के दशक में कंपनी को चीनी द्वारा किये गये जबरदस्त विरोध का सामना करना पड़ा क्योंकि कंपनी के द्वारा अफीम की निरंतर तस्करी की जा रही थी जिससे वहाँ की सरकार नाराज हो गई। इसको यह भय हुआ कि कहीं चाय के व्यापार में होने वाले लाभ में रुकावट न पैदा हो जाए और इसी कारण से कंपनी ने अपने विजित क्षेत्र असम में चाय की खेती प्रारंभ करा दी। जब उसका यह प्रयोग सफल रहा तब कंपनी ने अपने चाय बगान का आवंटन व्यक्तिगत कंपनियों को कर दिया। इन कंपनियों में सबसे पहली कंपनी असम कंपनी थी। अन्य दूसरी कंपनियों ने 1850 में अपने बागानों की स्थापना की। इन चाय बागानों में काम करने के लिए स्थानीय मजदूरों का अभाव था, इसलिए छोटानागपुर तथा अन्य क्षेत्रों से बंधुआ मजदूरों को लाया गया। यह एकमात्र ऐसा उदाहरण है जिसमें व्यवसायिक फसलों का उत्पादन व्यापक रूप में पूँजीवादी उद्यमों के आधार पर किया गया। चाय, कॉफी और इसी प्रकार की अन्य खेती का प्रारंभ वास्तविक रूप में 1860 के बाद ही शुरू हुआ, लेकिन यह समय हमारे इस पाठ्यक्रम के बाहर का है।

## 16.6 व्यवसायीकरण के प्रभाव

हम विस्तृत रूप से देख चुके हैं कि किस प्रकार से व्यवसायिक फसलों का उत्पादन हुआ और किस ढंग से उनका विक्रय किया गया। यह स्पष्ट हो चुका होगा कि प्रत्येक फसल दूसरी से किसी न किसी रूप में भिन्न थी। इसी प्रकार से व्यवसायीकरण के प्रभाव एक समय से दूसरे समय में, एक स्थान से दूसरे स्थान पर और एक फसल से दूसरी फसल पर निश्चय ही भिन्न-भिन्न होंगे। हम यह आशा नहीं कर सकते हैं कि वे सभी जगहों पर बिल्कुल एक समान होंगे फिर भी, कुछ निश्चित समान विशेषताएं और कुछ समान निश्चित प्रभाव विद्यमान होते ही हैं। इसी आधार पर इस भाग में विवेचन किया जाएगा।

### 16.6.1 दरिद्रता

हम अपना प्रारंभ भारत की संपूर्ण अर्थव्यवस्था से करेंगे। आपको याद होगा कि अंग्रेजों का उद्देश्य यूरोप को निर्यात करने वाली वस्तुओं का उत्पादन करना था। ऐसा करने से लंदन स्थित कंपनी के खजाने में धन एकत्रित किया जा सकता था। व्यक्तिगत अंग्रेज व्यापारी भी धन को वापस लंदन भेजना चाहते थे जिससे कि अंततः रिटायर्ड होने पर अपना जीवन आराम से ब्रिटेन में व्यतीत कर सकें। इसलिए निर्यात ने अनिवार्यतः भारतीय स्रोतों को धन रूप में भारत से बाहर भेजने का कार्य किया। यही वह उपाय था जिसने भारतीय "नजराने" को ब्रिटेन को हस्तांतरित किया। इन निर्यातों के बदले में भारत को कोई आयात प्राप्त नहीं होता था। स्पष्टतः इस हस्तांतरण ने भारत को दरिद्र बनाया। इस प्रकार व्यवसायिक फसलों की वृद्धि एवं निर्यात ने भारत को धनी करने के स्थान पर दरिद्र ही किया।

### 16.6.2 अस्थायित्व

भारतीय कृषि पर बहुत से संकट आते रहे। सूखा, बाढ़ और अन्य प्राकृतिक आपदाओं ने फसलों को नष्ट एवं किसानों को बरबाद किया। लेकिन व्यवसायिक कृषि ने नये प्रकार के खतरों को उजागर किया। अब फसलों की आपूर्ति दूर के बाजारों को हो रही थी। यदि पश्चिम भारतीय गन्ने के अच्छे दाम थे पर वे कलकत्ता में कम हो सकते थे तथा आजमगढ़ में चीनी फैक्ट्रियाँ उन दामों से भी कम दे सकती थी जिसका उन्होंने वायदा

किया। अगर शिकायत की जाती तो वे किसानों के साथ दुराचार करते।



इसी भांति 1816 के बाद से मध्य प्रदेश के उत्तरी भाग बुंदेलखंड क्षेत्र में चीन के बाजार के लिए कपास का उत्पादन होने लगा था। अंग्रेज अधिकारियों ने दावा किया कि अब यह क्षेत्र संपन्न होने लगा है अतः इस क्षेत्र में भूमि करों में वृद्धि की जाये। लेकिन 1830 के दशक में निर्यात घटने लगा तथा कपास के दामों में गिरावट आयी परंतु भूमि कर पहले के बराबर जारी रहा। फलस्वरूप जमींदार एवं किसान दोनों दरिद्र होने लगे, भूमि पर खेती बाड़ी बंद हो गई और अंततः इस क्षेत्र के किसानों ने 1842 का विद्रोह कर दिया जिसको बुंदेला विद्रोह के नाम से जाना जाता है।

1830 के वर्षों में इसी प्रकार की समस्या का सामना उत्तर प्रदेश ने भी किया। कपास और नील के दामों में गिरावट आयी। इतिहासकार प्रो. सिद्दीकी ने इसका विवरण करते हुए लिखा है "किसान अपनी जमीनों को त्याग रहे थे, जमींदारों को नुकसान हो रहा था। महाजन बरबाद हो गये थे क्योंकि उन्होंने जो ऋण दिये थे उनको अदा न किया जा सका, उनमें बहुतों ने अब किसानों को ऋण देने से इंकार कर दिया। भूमि का अवमूल्यन हुआ। सरकार को ऐसे बहुत से मामलों की सूचना दी गई जिनके अनुसार जमीन को बेचने का प्रयास किया गया किंतु कोई खरीदने के लिए तैयार नहीं हुआ।" इसी समय बंगाल के ग्रामीण अंचलों की भी यही स्थिति थी।

सिक्के का एक दूसरा पहलू भी था। 1830 एवं 1833 के बीच में वे सभी कंपनियाँ जो निर्यात व्यापार से जुड़ी थी तथा जो बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश में व्यवसायिक कृषि को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराती थी, दिवालिया हो गई। कारण यह था कि दाम गिर जाने के बावजूद भी वे नील को ब्रिटेन भेज रही थी, क्योंकि वे अपने धन को भारत से बाहर निकालना चाहते थे। सरकार ने चाँदी के सिक्कों को ब्रिटेन भेजकर स्थिति को और भी गंभीर बना दिया और भारत में धन के अभाव का संकट पैदा हो गया। जिन व्यापारियों ने निर्यात फसलों के उत्पादन हेतु उधार लिया था वे ऋणों की अदायगी न कर सके और दिवालिया हो गये। अंत में निश्चय ही इस संकट का भयंकर शिकार किसान हुए क्योंकि इन किसानों को ताकत के बल पर तथा दबाव में व्यवसायिक फसलों को उगाने के लिए बाध्य किया गया था। लंदन में मूल्यों में गिरावट भारतीय कृषकों के लिए बरबादी का पैगाम लेकर आयी। कहने का तात्पर्य यह है कि कृषि के व्यवसायीकरण ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अस्थिरता के एक नये तत्व को जोड़ दिया।

### 16.6.3 बहुत से बाजार

हमने उपरोक्त 16.2 भाग में देखा था कि व्यवसायीकरण पर विचार विभिन्न बाजारों के संदर्भ में किया जाना चाहिए। हम यह भी देख चुके हैं कि विभिन्न उत्पादों जैसे कि रेशम, अफीम, नील आदि के लिए कैसे बाजारों का विकास हुआ। इसलिए उत्पाद बाजार ने स्वयं का प्रसार एवं फैलाव किया। लेकिन जिन बाजारों की हमने सूची बनायी थी, उनका क्या हुआ?

इस प्रश्न के उत्तर की तलाश करते समय हमें यह याद रखना चाहिए कि जिस ढंग से भारत में व्यवसायीकरण का विकास हुआ उसने बाजारों के विकास में बाधा डाली। सबसे पहले हम चाय की खेती पर अपना ध्यान केंद्रित करें। तब हम पायेंगे कि फसल में उत्पादन का कार्य मजदूरी पर रखे गये मजदूरों से नहीं कराया गया। ऐसा ही हमने नील की खेती में देखा। प्रधानता उस प्रणाली को दी गई जिसके अंतर्गत किसान को आवश्यक उत्पाद की कम से कम मूल्य पर आपूर्ति करने के लिए बल पूर्वक विवश किया जाता था और इस प्रणाली को रैयत प्रणाली कहा गया। इस प्रकार की व्यवस्था में कम से कम आमदनी होती थी और इसी कारण किसान को इसे उगाने के लिए बल पूर्वक विवश करना पड़ता था। अपने भोजन की आवश्यकताओं के लिए वे शेष खाली भूमि पर अपने एवं अपने परिवार के लिए जीवित रहने लायक खाद्यानों का उत्पादन कर लेते थे। लेकिन खेती विहीन मजदूर ऐसा न कर सके और उनको अपने भोजन के लिए और अधिक पैसा अदा करना पड़ता था। इसलिए बागान मालिकों और व्यापारियों ने नकद मजदूरी पर मजदूरों को नहीं रखा जिसके कारण श्रम बाजार का विकास न हो सका।

अंतर्गामी बाजार पर भी इसी तरह का प्रभाव हुआ। व्यवसायिक फसल को उगाने के लिए किसान को अपने हल, बैल आदि यंत्रों का प्रयोग करना पड़ता था। लेकिन उसको इसके

लिए उचित दाम न दिया जाता था क्योंकि ऐसा करने पर मालिक के मुनाफे में कमी आती थी। इससे होने वाले नुकसान की भरपाई उसको स्वयं ही उठानी पड़ती क्योंकि स्वयं अपने लिए खाद्यान की आपूर्ति बनाये रखने के लिए उसको उत्पादन करने में इन यंत्रों को काम में लाना होता था। श्रम बाजार की भांति ही इन अंतर्गामियों के लिए भी सरलता से किसी भी बाजार का विकास न हो सका।

भूमि बाजार के विकास को भी रोका गया। आप यह भली भांति जानते हैं कि भूमि की खपत चावल या दाल की तरह से नहीं होती। जिस समय हम भूमि को खरीदते हैं तब हम यह भी आशा करते हैं कि यह पैदावार दे। अगर किसी को यह भरोसा हो जाए कि यह भूमि कोई पैदावार नहीं देगी तब भूमि को कोई नहीं खरीदेगा अर्थात् ऐसी आशा की गई थी कि कोई भी नील या अफीम का मालिक अचानक उससे कोई नयी मांग नहीं करेगा। इस भय के कारण कोई बाहरी आदमी भूमि को खरीदेने के लिए आगे नहीं आता था और जिसके कारण भूमि बाजार का विकास न हो सका। जो पीढ़ी दर पीढ़ी किसान थे वे ही भूमि पर खेती कर सकते थे। कारण स्पष्ट था क्योंकि उनके पास रोजगार के दूसरे अवसर नहीं थे। लेकिन भू-राजस्व को एकत्रित करने वाले एजेंटों ने जमींदार तथा बागान के मालिकों ने भूमि बाजार के विकास को रोका।

अंत में एक ऋण बाजार भी होता है। इस बाजार में ऋण दिये जाते हैं। लेकिन कंपनी शासन के दौरान इसके फैलाव को रोकने के प्रयास किये गये। मालिकों के द्वारा किसानों को ऋण प्रदान किये जाते थे जिससे कि उनको दबा कर रखा जा सके। एक अंग्रेज अधिकारी ने पर्यवेक्षण करते हुए लिखा कि अगर एक रैयत को पेशगी दे दी जाए तो वह इसको कभी भी अदा नहीं कर पाता और उसकी स्थिति किसी भी फैक्टरी के बंधुआ मजदूर से कुछ ही बेहतर होती है। इस स्थिति में कोई भी किसान को ऋण नहीं देना चाहता था क्योंकि इसके वापस होने की संभावना नगण्य थी। इस हालात में किसान ऋण कैसे चुका सकता था। दूसरी ओर जो मालिक थे वे भी नहीं चाहते थे कि इस पेशगी धन की अदायगी की जाये। अगर ऐसा हो जाता तब किसान उनके नियंत्रण से मुक्त हो सकता था। इस प्रकार की स्थिति अफीम की खेती करने वाले किसानों के साथ भी थी। किसान लोग पेशगी धन को फसल उगाने के लिए भाग में लेते थे। उनको डर था कि यदि उन्होंने इंकार कर दिया तब उनको गांव के मुखिया या सरकार का कोपभाजन बनना पड़ेगा। एक ऐसा स्वतंत्र बाजार स्पष्ट तौर पर अस्तित्व में न आ सका जिसमें कोई भी व्यक्ति अपने हितों के अनुरूप कार्यवाही कर सके।

### 16.6.4 सामाजिक संरचना

कभी-कभी ऐसा विश्वास किया जता है कि व्यवसायीकरण के अंतर्गत किसानों में निश्चित रूप से असमानता बढ़ती है। कुछ किसान संपन्न हो सकते हैं और वे नकद मजदूरी पर मजदूरों को रखेंगे, कुछ को विवश होकर अपनी जमीनों को छोड़कर मजदूर बनना पड़ेगा। ऐसा तभी हो सकता है जब बाजार को स्वतंत्र रूप से विकसित होने दिया जाये और स्वतंत्र रूप से कार्य करने दिया जाये। विशेषरूप से यदि भूमि बाजार इस प्रकार से कार्य करते तब यह अच्छा ही होता। लेकिन जिस व्यवसायीकरण का हम अध्ययन कर रहे हैं उसके विषय में यह घटित न हो सका। अनवरत रूप से किये जाने वाले दमन एवं राज्य शक्ति ने बाजारों के स्वतंत्र विकास को अवरुद्ध और पूर्ण श्रम बाजार को पैदा होने से रोका। इस सबके बावजूद व्यवसायिक फसलों के उत्पादन ने छोटे किसानों की उत्पादन व्यवस्था को तेजी से धराशायी कर उनको दरिद्र बना दिया। अपने छोटे-छोटे खेतों में इन किसानों के द्वारा अपने परिवारजनों की सहायता से उत्पादन किया जाता था। परंतु नील की खेती कराने वाले मालिकों और अफीम के एजेंटों ने इनको अपने इन छोटे खेतों पर व्यवसायिक फसलों को करने के लिए बाध्य किया जिससे उनको बहुत कम आमदनी होती थी या बिल्कुल ही नहीं। किसान को दरिद्र बना दिया गया था। लेकिन न तो उत्पादन के तरीकों और न ही उत्पादन के संगठन को बदला गया। यूरोपीय व्यापारियों को इन छोटे किसानों के द्वारा इन व्यवसायिक फसलों को पैदा कराके अधिक मुनाफा हुआ और इसलिए उन्होंने इस कार्य के लिए नकद मजदूरी पर मजदूरों को नहीं रखा।

**बोध प्रश्न 2**

1) कच्ची रेशम एवं अफीम का उत्पादन करने में अंग्रेजों का क्या हित था?

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

2) क्या व्यवसायीकरण किसानों के लिए लाभदायक था? 60 शब्दों में उत्तर दें।

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

3) बहुत से बाजारों पर व्यवसायीकरण का क्या प्रभाव हुआ? 100 शब्दों में उत्तर दें।

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

## 16.7 सारांश

इस प्रकार हमने इस इकाई में देखा कि भारत में व्यवसायीकरण कोई नयी चीज न थी। लेकिन प्रारंभिक अंग्रेज शासन के दौरान इसने जो स्वरूप ग्रहण किया वह निश्चय ही पहले के शासकों के शासन काल में विद्यमान स्वरूप से महत्वपूर्ण ढंग से भिन्न था। यह व्यवसायीकरण एक व्यापारिक कंपनी के अधीन हुआ। इस कंपनी का मुख्यालय इंग्लैंड में स्थित था और उसके अधिकतर कर्मचारी भी वहीं से आते थे।

- इसलिए भारत से धन को भेजना या रूपांतरित करना ही उनका मुख्य उद्देश्य था।
- पश्चिम के बाजारों में जिन वस्तुओं की मांग थी उनके ही उत्पादन को संगठित करने का कार्य किया गया।
- कंपनी भारतीय वस्तुओं को कम से कम मूल्य पर खरीदना चाहती थी इसीलिए भारतीय उत्पादनकर्त्ताओं के दमन के साथ-साथ उनके विरुद्ध हिंसात्मक साधनों का प्रयोग भी किया। ऐसा ही करने की अनुमति बागानों के मालिकों एवं दूसरों को दी गई जिससे कि भारतीय किसानों से कम से कम कीमत पर उत्पादन कराया जा सके।
- किसानों को अर्ध-गुलाम बनाकर इन फसलों का उत्पादन कराया गया जिससे कि उनको अधिक से अधिक मुनाफा हो। इस काम के लिए नकद मजदूरी पर मजदूरों को नहीं रखा गया।
- जहाँ एक ओर उत्पादन बाजारों का व्यवसायीकरण हुआ वहीं दूसरी ओर भूमि बाजार एवं श्रम बाजार विकसित न हो सके।

- किसान अर्थव्यवस्था दरिद्र हो गई लेकिन न तो उत्पादन के तरीकों और न ही उत्पादन के संगठन को बदला गया।
- परिणामस्वरूप भारत के ग्रामीण अंचलों में कृषि का आधार परिवार के सदस्यों द्वारा किये जाने वाला श्रम ही बना रहा।

## 16.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1) देखें भाग 16.2

2) आपका उत्तर मुख्यत: अंग्रेजी कंपनी के व्यापारिक हित पर केंद्रित होना चाहिए। देखें भाग 16.4

3) i) ब ii) स

**बोध प्रश्न 2**

1) देखें उप भाग 16.5.1 और 16.5.2

2) देखें उप भाग 16.6.2

3) देखें उप भाग 16.6.3